08_sandeep_Layout 1 5/1/2014 3:37 PM Page 94

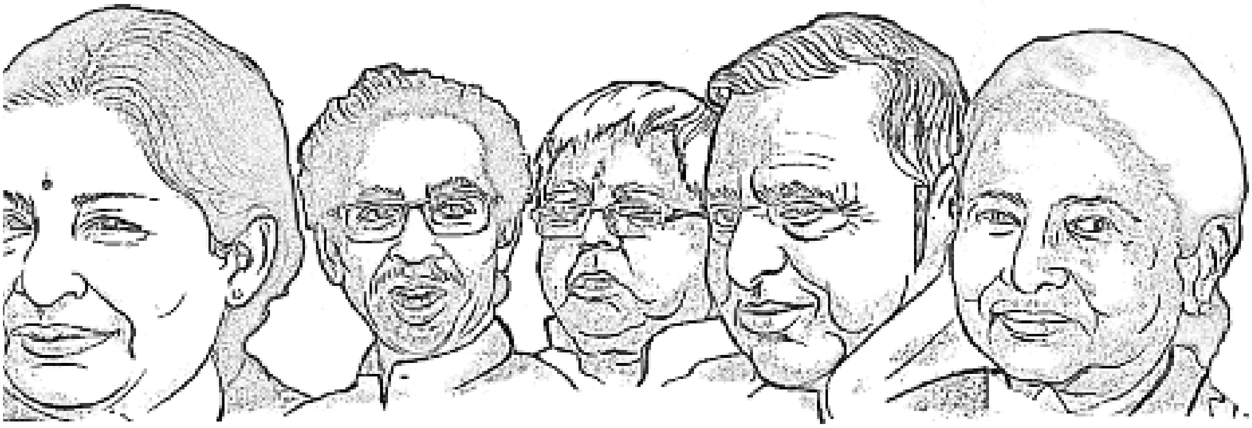

नये 'केंद्र' बनते राज्य?

संदीप शास्त्री[1]

अनुवाद : कमल नयन चौबे

पिछले पच्चीस वर्षों (1989-2014) में लोकसभा के सात चुनाव हुए हैं। इस दौर में राजनीतिक प्रतियोगिता की प्रकृति और संरचना में मूलभूत बदलाव हुआ है और भारतीय संघ के राज्य साफ़ तौर पर राजनीति के नये केंद्र के रूप में उभरे हैं। बदलाव का कारण कोई संविधान संशोधन या क़ानूनी प्रक्रिया न हो कर राजनीतिक दलों के बीच होने वाली होड़ का स्वाभाविक प्रतिफल है। बीसवीं सदी के आख़िरी दशक से ही भारत में एकदलीय प्रभुत्व वाली प्रणाली का स्थान एक प्रामाणिक बहुदलीय प्रणाली ने ले लिया है। इस दलीय प्रणाली की कुछ ख़ास विशेषताएँ हैं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के समर्थन आधार का धीरे-धीरे क्षय होने के कारण इसका उभार हुआ है, और बजाय इसके कि कांग्रेस द्वारा ख़ाली किये गये स्थान पर किसी एक दल का क़ब्ज़ा होता, कई दलों ने इस जगह की भरपायी कर दी है। इसीलिए विभिन्न राज्यों में अलग-अलग दल कांग्रेस के मुख्य विरोधी बन गये हैं। राज्य स्तरीय दलों की सिर्फ़ अपने राज्यों में ही भूमिका नहीं बढ़ी है, बल्कि इन दलों ने गठबंधन सरकारों का भाग बन कर और शासक गठजोड़ों का समर्थन कर के राष्ट्रीय राजनीति पर भी गहरा प्रभाव डाला है। इसी के स्वाभाविक नतीजे के तौर पर राजनीतिक होड़ राज्यों में केंद्रित हो गयी है। मेरे इस लेख में 1990 के बाद राजनीतिक प्रतियोगिता के स्वरूप में हुए बदलावों की

[1] यह शोध-पत्र तैयार करने में कई सहकर्मियों ने मेरी मदद की. मैं रीतिका स्याल का शुक्रगुज़ार हूँ, जिन्होंने राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन के आँकड़ों का आरम्भिक विश्लेषण किया. मोनिका चौहान ने आँकड़ों का विश्लेषण करने में मेरी मदद की. निश्चित रूप इस शोध-पत्र के विश्लेषण और निष्कर्षों की पूरी ज़िम्मेदारी मेरी है.

08_sandeep_Layout 1 5/1/2014 3:37 PM Page 95

मुख्य प्रवृत्तियों पर ध्यान देते हुए इस बात का विश्लेषण किया गया है कि किस तरह राज्य इस राजनीति के नये 'क्षेत्र' के रूप में सामने आये हैं। इस शोध-पत्र में कुल जमा आँकड़ों के उपयोग के साथ-साथ राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन (एनईएस) के आँकड़ों का भी प्रयोग हुआ है। अंत में इन प्रवृत्तियों के 2014 के लोकसभा चुनावों पर पड़ने सम्भावित प्रभावों की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गयी है।

राजनीतिक संदर्भ

पिछले पच्चीस वर्षों में राजनीतिक प्रक्रिया की गत्यात्मकता ने व्यवस्था में कुछ ऐसे परिवर्तनों का समावेश किया है जिनसे लोकतांत्रिक प्रक्रिया पहले से ज़्यादा गहरी हुई है।[2] चुनावी प्रतियोगिता[3] गहन होने के साथ-साथ लोकतांत्रिक दायरे का विस्तार[4] हुआ है। संसदीय व्यवस्था के साथ सत्ता में भागीदारी बढ़ी है,[5] संघीय प्रक्रिया में राज्यों द्वारा अधिकारों की दावेदारी में बढ़ोतरी हुई है।[6] इन परिवर्तनों में दलीय प्रतियोगिता और राजनीति में बदलाव भी शामिल हैं।[7]

तालिका -1 : लोकसभा में राष्ट्रीय, राज्यों की और अन्य मान्यता प्राप्त पार्टियाँ (1989-2009)

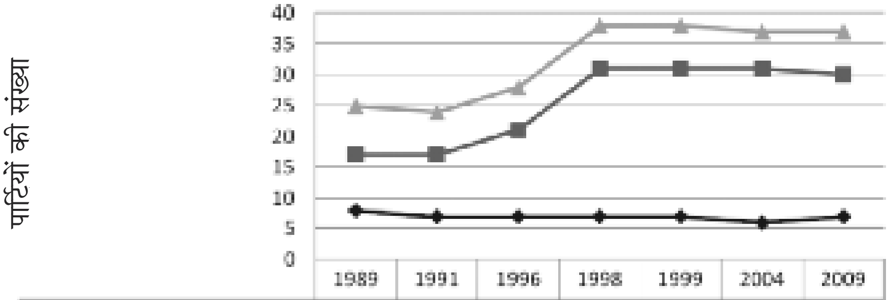

	1989	1991	1996	1998	1999	2004	2009
राष्ट्रीय पार्टियाँ	8	7	7	7	7	6	7
राज्य आधारित पार्टियाँ / अन्य पार्टियाँ	17	17	21	31	31	31	30
योग	25	24	28	38	38	37	37

स्रोत : चुनाव आयोग द्वारा प्रदत्त आँकड़े

[2] एसडीएसए (2008), *स्टेट ऑफ़ डेमॉक्रैसी इन साउथ एशिया रिपोर्ट,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

[3] संदीप शास्त्री, के.सी. सूरी और योगेंद्र यादव (2009)(सम्पा.), *इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन इण्डियन स्टेट्स,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

[4] योगेंद्र यादव और सुहास पलशीकर (2009), 'टेन थीसिस ऑन स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया', संदीप शास्त्री, के.सी. सूरी और योगेंद्र यादव (सम्पा.), *इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन इण्डियन स्टेट्स,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

[5] संदीप शास्त्री (2007), 'पार्लियोमेंटरी गवर्नमेंट ऐंड कोयलिशन गवर्नमेंट : निगोशिएटिंग स्पेसेज़', गोपा कुमार (2013)(सम्पा.), *फ़्यूचर ऑफ़ पार्लियामेंटरी डेमॉक्रैसी इन इण्डिया,* कांसेप्ट, नयी दिल्ली, 'पार्टी सिस्टम ऐंड डेमॉक्रैसी इन इण्डिया : डिस्टिंक्टिव फ़ीचर्स ऐट द नैशनल, स्टेट ऐंड लोकल लेवल', अजय मेहरा (सम्पा.), *पार्टी सिस्टम इन इण्डिया : इमर्जिंग ट्रैजेक्टरीज़,* लैंसर, नयी दिल्ली; (2014) (सद्यःप्रकाशित), 'द इमर्जेंस ऑफ़ ऐन ऑथेंटिक कॉम्पिटीटिव पार्टी सिस्टम ऐंड सिविल सोसायटी स्पेस इन इण्डिया', जो किनसैड, वोल्फ़ैंग रेनजेक, क्लॉस डेटरबेक (सम्पा.), *पॉलिटिकल पार्टीज़ ऐंड सिविल सोसायटी इन फ़ेडरल कंट्रीज़,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन.

[6] यादव और पलशीकर (2009), वही; शास्त्री (2013), वही.

[7] अजय मेहरा और गर्ट डब्ल्यू. क्वेक (2003)(सम्पा), *पॉलिटिकल पार्टीज़ ऐंड पार्टी सिस्टम इन इण्डिया,* सेज, नयी दिल्ली; सुहास पलशीकर और योगेंद्र यादव (2009), 'बिटविन फ़ार्चून ऐंड वर्च्यू : एक्सप्लेनिंग द कांग्रेसे'ज़ एम्बिगुअस विक्टरी इन (2009)', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 39 : अंक 64.

08_sandeep_Layout 1 5/1/2014 3:37 PM Page 96

तालिका -2 : लोकसभा में पार्टियों की सीटें

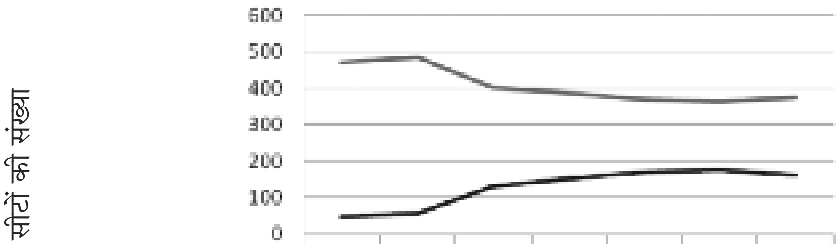

	1989	1991	1996	1998	1999	2004	2009
राष्ट्रीय पार्टियाँ	471	486	403	387	369	364	376
राज्य आधारित पार्टियाँ / अन्य पार्टियाँ	46	54	131	150	168	174	158

स्रोत : चुनाव आयोग द्वारा प्रदत्त आँकड़े

तालिका-3

लोकसभा में राष्ट्रीय, राज्यों की और अन्य मान्यता प्राप्त पार्टियों के वोट (1989-2009)

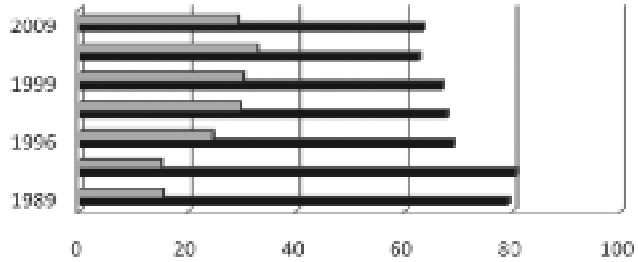

	1989	1991	1996	1998	1999	2004	2009
राज्य आधारित पार्टियाँ / अन्य पार्टियाँ	15.4	15.1	24.6	29.7	30.2	32.9	29.2
राष्ट्रीय पार्टियाँ	79.3	80.7	69.1	68	67.1	62.9	63.6

स्रोत : चुनाव आयोग द्वारा प्रदत्त आँकड़े

1989 के बाद का दौर एकदलीय प्रभुत्व की प्रणाली के अंत और राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रामाणिक प्रतियोगी दलीय प्रणाली के उभार के लिए जाना जाता है। यदि हम विभिन्न राजनीतिक दलों के मत प्रतिशत और लोकसभा में प्रतिनिधि भेजने वाले राजनीतिक दलों की संख्या पर ध्यान दें तो यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है। 1989 के बाद से लोकसभा में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने वाले दलों की संख्या में ख़ासा इज़ाफ़ा हुआ है। 1989-2009 तक के दौर में राष्ट्रीय दल माने जाने वाले दलों की संख्या तुलनात्मक रूप से स्थिर रही है, लेकिन राज्य स्तरीय दलों की संख्या में तेज़ी से वृद्धि हुई है (तालिका-1)। इसी तरह, सभी राष्ट्रीय दलों के प्रतिनिधियों की कुल संख्या में लगातार गिरावट आयी है। दूसरी ओर, लोकसभा में राज्य-स्तरीय दलों के प्रतिनिधियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि

हुई है (तालिका-2)। राष्ट्रीय दलों को मिलने वाले मतों में तक़रीबन 15 प्रतिशत तक की गिरावट आयी है, और इसका सीधा फ़ायदा राज्य स्तरीय दलों को मिलता है (तालिका-3)। ये प्रवृत्तियाँ राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी दलीय व्यवस्था के उभार की ओर संकेत करती हैं।

राजनीतिक दलों के बीच होड़ और चुनावी प्रतियोगिता की प्रकृति की समीक्षा से संकेत मिलता है कि कई तथाकथित (चुनाव आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त) 'राष्ट्रीय' राजनीतिक दलों का समर्थन-आधार देश के एक राज्य, या ज़्यादा से ज़्यादा कुछ राज्यों तक सीमित है। 1998 के बाद के दौर में सिर्फ़ 2009 का लोकसभा चुनाव ही ऐसा चुनाव रहा है, जिसमें कांग्रेस को सभी राज्यों में दस प्रतिशत से ज़्यादा मत मिले।

इससे पहले विशेष रूप से बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्यों में इसे मिलने वाले कुल वोट दस प्रतिशत से भी नीचे चले गये थे। जहाँ तक राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठजोड़ (राजग) का नेतृत्व करने वाले दल भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) का प्रश्न है, उसे 2009 के लोकसभा चुनावों में 28 राज्यों में से सिर्फ़ 18 राज्यों में ही दस प्रतिशत से ज़्यादा मत मिले थे। 2004 के लोकसभा चुनावों में इसे बीस राज्यों में दस प्रतिशत से ज़्यादा मत मिले थे। 2009 के चुनावों में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) (माकपा) को केवल चार राज्यों में दस प्रतिशत से ज़्यादा मत मिले, जबकि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) को सिर्फ़ एक राज्य में दस प्रतिशत से ज़्यादा मत मिले। बहुजन समाज पार्टी (बसपा) और राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (राकांपा) को सिर्फ़ तीन राज्यों में दस प्रतिशत से ज़्यादा मत मिले।

1989 के बाद से ही केंद्र में गठबंधन सरकारें या अल्पमतीय सरकारें गठित होती रही हैं।[8] 1989 में छोटे राजनीतिक दलों (कांग्रेस, भाजपा और कम्युनिस्ट पार्टियों के अतिरिक्त) ने एक साथ मिलकर एक गठबंधन (राष्ट्रीय मोर्चा) का निर्माण किया तथा भाजपा और कम्युनिस्ट पार्टियों के बाहरी समर्थन से सत्ता में आया। यह बंदोबस्त लम्बे समय तक नहीं चल सका और इसका स्थान छोटे दलों के अन्य गठबंधन ने लिया, जिसे कांग्रेस ने बाहर से समर्थन दिया। यह गठबंधन भी एक वर्ष से कम समय तक ही सत्ता में रह पाया। 1991 में हुए चुनावों के बाद कांग्रेस के नेतृत्व में सरकार बनी क्योंकि संघीय चुनावों में किसी भी एक दल को बहुमत नहीं मिला था। 1996 के चुनावों के बाद भाजपा सिर्फ़ 13 दिनों के लिए सत्ता में आयी और अपना बहुमत साबित करने में असमर्थ रहने के कारण इसे इस्तीफ़ा देना पड़ा। इसके स्थान पर 13 दलों का एक गठजोड़ (अधिकतर ग़ैर-कांग्रेस और ग़ैर-भाजपा दल) सामने आया, जिसे संयुक्त मोर्चा कहा गया। कांग्रेस के समर्थन से इसकी सरकार दो साल चली। 1998 में एक बार फिर से चुनाव हुए, जिसके बाद भाजपा के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठजोड़ (राजग) ने सरकार का गठन किया। 1999 में हुए चुनाव में इस गठजोड़ को जीत मिली और यह 2004 तक सत्ता में रहा। 2004 के चुनावों के बाद कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) की सरकार बनी और इस गठबंधन को 2009 के चुनावों में फिर से जीत मिली। ऐसे भी कई उदाहरण सामने आये हैं जिसमें कई दल एक गठबंधन को छोड़कर किसी अन्य गठबंधन में शामिल हुए हों। फिर भी, भारत में दो गठबंधनों ने एक तरह की स्थिरता हासिल कर ली है। इससे अखिल भारतीय स्तर पर दो-ध्रुवीय गठबंधन राजनीति के उभार की उम्मीद पैदा हुई है।

ध्यान रहे कि राजग और संप्रग, दोनों में ही गठबंधन के नेतृत्वकर्त्ता दल (संप्रग में कांग्रेस और राजग में भाजपा) को छोड़ कर अन्य सभी राजनीतिक दल राज्य स्तरीय हैं (संप्रग के घटक दल

---

[8] कांग्रेस ने 1991 में अल्पमत सरकार बनायी थी. इसे 1994 में बहुमत प्राप्त हुआ क्योंकि इसने संघीय संसद के निचले सदन लोकसभा में बहुत से सदस्यों को अपना दल छोड़कर कांग्रेस से जोड़ने में सफ़लता हासिल की.

08_sandeep_Layout 1 5/1/2014 3:37 PM Page 98

राष्ट्रवादी कांग्रेस के अलावा)। यह भी केंद्र से राज्यों की ओर 'राजनीति के केंद्र' और 'पार्टी प्रतियोगिता' के बदलाव के लिए जिम्मेदार एक महत्त्वपूर्ण कारण रहा है।

केंद्रीय राजनीति में राज्य

2004 के चुनावों में हार के बाद पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इस बात पर आश्चर्य जताया था कि आख़िर राजग चुनाव कैसे हार गया और संप्रग को चुनावों में किस तरह जीत मिल गयी।[9] इसकी एक सम्भावित व्याख्या इस बात में निहित है कि 2004 के लोकसभा चुनावों के नतीजे को 28 अलग-अलग राज्यों की राजनीतिक विशिष्टताओं के आधार पर 28 अलग-अलग फ़ैसलों के रूप में देखा जाए। 2009 के चुनाव नतीजों ने भी इसी प्रवृत्ति को दोहराया।

ऐसा लगता है कि पिछले कुछ वर्षों में तक़रीबन अधिकांश राज्यों में द्वि-ध्रुवीय गठबंधन व्यवस्था का उभार हुआ है। 2009 के लोकसभा चुनावों में आधे से ज़्यादा राज्यों में (28 में से 15 राज्यों में) दो प्रमुख दलों और गठबंधनों ने चुनावों में पड़े वैध मतों का 80 प्रतिशत से ज़्यादा हासिल किया। अन्य नौ राज्यों में दो प्रमुख दलों या गठबंधनों ने कुल वैध मतों का दो तिहाई से भी ज़्यादा हासिल किया। सिर्फ़ चार राज्यों में ही वास्तविक अर्थों में बहुकोणीय मुक़ाबला हुआ। इस तरह, राष्ट्रीय चुनावों में अधिकांश राज्यों में द्वि-ध्रुवीय गठबंधन व्यवस्था के अस्तित्व के कारण भारत के राज्य राजनीति के वास्तविक केंद्र के रूप में उभरे।

राज्यों में दलीय व्यवस्था का विश्लेषण करते हुए योगेंद्र यादव और सुहास पलशीकर ने तर्क दिया है कि राज्य स्तरीय दलीय व्यवस्था प्रतियोगी क़िस्म के कनवर्जेंस या महामेल की स्थिति में है।[10] दोनों विद्वानों को लगता है कि दलीय राजनीतिक प्रतियोगिता की मुख्य तौर पर चार क़िस्में हैं : दो-ध्रुवीय प्रतियोगिता जिसमें विधानसभा चुनावों में मुख्य प्रतियोगिता दो दलों के बीच होती है (सात राज्य); बहुदलीय प्रतियोगिता, जहाँ मुख्य रूप से दो गठबंधनों के बीच मुक़ाबला होता है (सात राज्य); स्थिर बहु-ध्रुवीय प्रतियोगिता जहाँ मुक़ाबला दो से ज़्यादा प्रभावशाली दलों के बीच होता है, जिसमें एक दल का स्थिर बहुमत के साथ उभार होता है (आठ राज्य); (4) तरल बहु-ध्रुवीय प्रतियोगिता जहाँ विधानसभा चुनावों में स्पष्ट बहु-दलीय प्रतियोगिता होती है।[11] उल्लेखनीय है कि राज्यों की आख़िरी श्रेणी में भी एक दल या गठबंधन की स्थिर सरकारें हैं। एक अन्य नज़रिये से विचार करते हुए यह तर्क दिया जा सकता है कि अधिकतर राज्यों में स्थिर द्वि-दलीय व्यवस्था या द्वि-गठबंधन व्यवस्था है। यह बात इस तथ्य से सामने आती है कि 28 में से 22 राज्यों में शासक दल/गठबंधन और मुख्य विपक्षी दल/गठबंधन को राज्य में हुए आख़िरी चुनावों में दो-तिहाई से भी ज़्यादा मत मिले हैं। यह 'फ़र्स्ट पास्ट द पोस्ट' (एफ़पीटीपी) व्यवस्था में ध्रुवीकरण की तुलनात्मक रूप से ऊँची दर दिखाता है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि राज्यों के चुनावों में विभिन्न विकल्पों के बीच मतदाताओं का स्पष्ट ध्रुवीकरण होता है।

दलीय प्रतियोगिता से संबंधित दो अन्य आयामों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। राज्य स्तरीय दल और उनके नेता आज राष्ट्रीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। केंद्र में बनने वाली गठबंधन सरकारों के लिए गठबंधन के निर्माण में उन्होंने प्रमुख भूमिका अदा की है और सत्ता में उनकी महत्त्वपूर्ण हिस्सेदारी रही है। पिछले दो दशकों की गठबंधन सरकारों में वित्त, रक्षा, कृषि, रेलवे,

---

[9] *द इण्डियन एक्सप्रेस* (2006), 29 मई.

[10] यादव और पलशीकर (2009), वही.

[11] श्रेणी-1 : राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, छत्तीसगढ़, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड; श्रेणी-2 : तमिलनाडु, पंजाब, केरल, महाराष्ट्र, ओडीशा, बिहार, त्रिपुरा; श्रेणी-3 : आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, असम, झारखण्ड, जम्मू और कश्मीर, मणिपुर; श्रेणी-4 : अरुणाचल प्रदेश, मिज़ोरम, हरियाणा, पश्चिमी बंगाल. देखें, योगेंद्र यादव और सुहास पलशीकर (2009 ब) : 59-60.

उद्योग, सूचना, कानून और वाणिज्य जैसे महत्त्वपूर्ण मंत्रालय राज्य स्तरीय दलों के पास रहे हैं। कई बार महत्त्वपूर्ण मंत्रालयों के लिए उन्होंने ज़बरदस्त सौदेबाज़ी भी की है। अब केंद्रीय मंत्रिपरिषद में राज्य-स्तरीय दलों के प्रतिनिधियों का चयन प्रधानमंत्री का विशेषाधिकार नहीं रह गया है, बल्कि इन दलों के नेता ही इसके बारे में फ़ैसला करते हैं।[12] इसी तरह राज्य स्तरीय दल अब संघीय गठबंधनों में अपनी असरदार उपस्थिति दर्ज कराते हैं।

2009 के राष्ट्रीय चुनावों में नेतृत्व के महत्त्व का विश्लेषण करने पर भारतीय राजनीति के नये केंद्र के रूप में राज्यों के उभार का तथ्य प्रामाणिक रूप से सामने आता है।[13] राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन-2009 के आँकड़ों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रधानमंत्री पद के लिए उम्मीदवार के रूप में किसी भी राष्ट्रीय स्तर के नेता को बीस प्रतिशत से ज़्यादा लोगों ने अपना समर्थन नहीं दिया। इस संबंध में राज्यों की तस्वीर काफ़ी अलग है। दस राज्यों में मौजूदा मुख्यमंत्रियों चालीस प्रतिशत से भी ज़्यादा लोगों ने अपना समर्थन दिया।

छह राज्यों में एक तिहाई लोगों ने और छह अन्य राज्यों में बीस प्रतिशत से ज़्यादा लोगों ने मौजूदा मुख्यमंत्री का समर्थन किया। सिर्फ़ एक राज्य को छोड़कर, जहाँ मौजूदा मुख्यमंत्री को तीस प्रतिशत से भी ज़्यादा लोगों ने समर्थन दिया था, बाक़ी राज्यों में शासक दलों ने लोकसभा चुनावों में अच्छा प्रदर्शन किया। इसमें वे राज्य शामिल हैं, जहाँ मुख्यमंत्री क्षेत्रीय दल से थे या फिर कांग्रेस और भाजपा से संबंधित थे। खासतौर पर, भाजपा और कांग्रेस के मामले में यह बात सच है। जहाँ ये दल सत्ता में थे और इनके मुख्यमंत्रियों के रेटिंग अच्छी थी, वहाँ इन दलों ने लोकसभा चुनावों में बेहतर प्रदर्शन किया।[14] इससे यह प्रश्न सामने आता है कि किस स्तर के नेतृत्व ने दल के पक्ष में मतदाताओं को गोलबंद करने में सफलता प्राप्त की ?

2004 और 2009 के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन से कुछ महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ सामने आती हैं। तालिका-4 से यह बात सामने आती है कि 2004 के चुनावों में दो-तिहाई और 2009 के चुनावों में आधे राज्यों में लोगों ने एक ही दल के व्यक्ति को मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री पद के लिए अपनी पसंद बताया। ऊपर विकल्प की प्रकृति के बारे में बताया गया है, जिससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि कौन-सा विकल्प मतदाताओं को आकर्षित करता है। इसके अतिरिक्त, तालिका-5 से यह संकेत मिलता है कि मौजूदा मुख्यमंत्री के लिए वरीयता ने राज्य के लोकसभा चुनावों में मतदाताओं को शासक दल के पक्ष में मतदान करने के लिए प्रेरित किया। यह नोट करने की आवश्यकता है कि टी-टेस्ट और ची-स्क्वायर सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

राष्ट्रीय राजनीति की प्रवृत्तियों को एक आकार देने में राज्य की केंद्रीय भूमिका समझने का एक अन्य तरीक़ा यह है कि 1996 के बाद हुए राष्ट्रीय चुनावों के नतीजों की प्रकृति के विभिन्न राज्यों के पैटर्न पर ध्यान दिया जाए। हर चुनाव के साथ यह प्रवृत्ति ज़्यादा-से-ज़्यादा स्पष्ट होती गयी है। प्रमुख

---

[12] राजग और संप्रग- दोनों गठबंधनों की सरकारों में इस तरह की प्रवृत्तियाँ सामने आयीं. जब राजग की सरकार बनने के बाद गठबंधन में समता पार्टी, शिव सेना, तृण मूल कांग्रेस और द्रमुक जैसे दलों ने अपने पसंदीदा मंत्रालयों पर दावा किया और उन पर अपने मंत्री नियुक्त करवाए. संप्रग के बारे में यह बात पूरी तरह ज़ाहिर है कि द्रमुक ने केबिनेट के महत्त्वपूर्ण मंत्रालयों के लिए काफ़ी दबाव डाला था. अप्रैल-मई, 2010 में केंद्रीय मंत्रियों के ख़िलाफ़ भ्रष्टाचार के बहुत सारे आरोप लगे. कांग्रेस से संबंधित एक मंत्री ने इस्तीफ़ा दे दिया. लेकिन गठबंधन में शामिल दूसरे दलों के मंत्रियों ने काफ़ी समय तक अपना इस्तीफ़ा नहीं दिया और उनके दलों के नेताओं ने उनका समर्थन किया.

[13] संदीप शास्त्री (2009), 'लीडरशिप ऐट द स्टेट लेवल मैटर्ड', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, खण्ड 39, अंक 64 : 88-91.

[14] इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि कांग्रेस ने दिल्ली, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, हरियाणा, असम और मिज़ोरम में अच्छा प्रदर्शन किया और भाजपा ने गुजरात, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़ और कर्नाटक में अच्छी सफलता दर्ज की.

08_sandeep_Layout 1 5/1/2014 3:37 PM Page 100

तालिका-4

मुख्यमंत्री के दल / गठबंधन की वरीयता प्रधानमंत्री के दल / गठबंधन की वरीयता तय करती है

	2004		2009[15]	
	राज्य 2009[16]	प्रतिशत	राज्य	प्रतिशत
मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री के लिए अलग-अलग दलों के नेताओं को वरीयता	9	37	13	46
मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री के लिए एक ही दलों के नेताओं को वरीयता	18	63	12	54

सैम्पल 27098 (2004), 34916 (2009) **स्रोत :** सी.एस.डी.एस. आँकड़ा एकांश

तालिका-5

लोकसभा चुनाव में शासक दल के लिए मत और मुख्यमंत्री पद का वरीयता प्राप्त उम्मीदवार, 2004 और 2009

	2004 चुनाव	2009 चुनाव
	मौजूदा मुख्यमंत्री को वरीयता	मौजूदा मुख्यमंत्री को वरीयता
लोकसभा चुनावों में विपक्षी दल के लिए मत	12	30
लोकसभा चुनावों में शासक दल के लिए मत	88	70

सैम्पल 27098 (2004), 34916 (2009) **स्रोत :** सी.एस.डी.एस. आँकड़ा एकांश

तालिका-6

ऐसे राज्यों का प्रतिशत जहाँ शासक दल ने लोकसभा चुनावों में राज्य के सीटों के बहुमत पर जीत हासिल की

1996	1998	1999	2004	2009
75	59	50	82	88

स्रोत : चुनाव आयोग द्वारा प्रदत्त आँकड़े

राज्यों (पाँच सीट से ज़्यादा वाले) पर ध्यान देने से यह बात सामने आती है कि राज्यों में शासक दल लोकसभा चुनावों में मतदाताओं की पहली पसंद रहा है।[17]

बहरहाल, जिन राज्यों में लोकसभा चुनावों में शासक दलों के उम्मीदवार को जीत नहीं मिली, वहाँ ऐसे कई महत्त्वपूर्ण कारण रहे हैं जिन पर गहरायी से विचार करने की आवश्यकता है। आंध्र प्रदेश

[15] महाराष्ट्र और त्रिपुरा में कोई स्पष्ट निर्णय नहीं.

[16] ओडीशा और अरुणाचल प्रदेश में कोई स्पष्ट निर्णय नहीं.

[17] उत्तराखण्ड, छत्तीसगढ़ और झारखण्ड जैसे राज्यों पर इसमें विचार नहीं किया गया है क्योंकि इस दौर में उनका गठन नहीं हुआ था. जिस दौर में ये राज्य क्रमश: उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार का भाग थे, उस दौर में उन्हें इन राज्यों के विश्लेषण में शामिल किया गया है.

08_sandeep_Layout 1 5/1/2014 3:37 PM Page 101

में 1996 और 1998 में शासक दल एक राज्य स्तरीय दल तेलुगु देशम पार्टी (तेदेपा) था। इसे 1996 में आंध्र प्रदेश के 43 प्रतिशत सीटों पर जीत मिली थे और इस पार्टी ने इन चुनावों के बाद गठित हुए संयुक्त मोर्चा की सरकार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 1998 में यह राजग का चुनाव-पूर्व सहयोगी नहीं था और संयुक्त मोर्चा सरकार की विफलता के कारण भी इसकी स्थिति काफ़ी प्रतिरक्षात्मक थी। असम में 1996, 1998 और 1999 के चुनावों के दौरान असम गण परिषण (अगप) शासक दल था। लोकसभा चुनावों में इसे 40 प्रतिशत से ज़्यादा सीटों पर जीत मिली और यह संयुक्त मोर्चा सरकार का भाग था। सरकार के अंग के रूप में इसे भी दो लगातार संयुक्त मोर्चा सरकारों के पतन के कारण आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। इसके अलावा, 1999 तक राज्य सरकार तेज़ी से अपनी लोकप्रियता खोने लगी थी और 2001 के विधानसभा चुनावों में इसे हार का सामना करना पड़ा। बिहार में 1998 और 1999 में सतारूढ़ राष्ट्रीय जनता दल (राजद) के आधार पर कुछ हद तक भाजपा-समता पार्टी ने क़ब्ज़ा जमा लिया था। हरियाणा में भारतीय राष्ट्रीय लोक दल की सरकार काफ़ी अलोकप्रिय थी, इसलिए 2004 के लोकसभा चुनावों में इसका खाता भी नहीं खुला और अगले साल हुए विधानसभा चुनावों में भी इसे हार का सामना करना पड़ा। 1998 के लोकसभा चुनावों में कर्नाटक में सत्तारूढ़ जनता दल का काफ़ी ख़राब प्रदर्शन रहा था, क्योंकि विभाजन के बाद लोक शक्ति पार्टी का गठन हुआ था। ओडीशा में 1998 और 1999 के लोकसभा चुनावों में सत्तारूढ़ कांग्रेस का प्रदर्शन काफ़ी ख़राब रहा, क्योंकि कांग्रेस की सरकार काफ़ी अलोकप्रिय थी। आख़िरकार 2000 में हुए विधानसभा चुनावों में भी कांग्रेस को हार का सामान करना पड़ा। 1996 में सत्तारूढ़ भाजपा को आधे से भी कम सीटों पर जीत मिली क्योंकि उसका कार्यकाल ख़त्म होने की कगार पर था। पश्चिम बंगाल में 2009 के चुनावों में वाम मोर्चा को ज़बरदस्त हार का सामना करना पड़ा और इसने अगले विधानसभा चुनावों में इसकी पराजय की भूमिका भी तैयार कर दी। इस ब्योरे से स्पष्ट होता है कि जिन राज्यों में शासक दलों ने लोकसभा चुनावों में अच्छा प्रदर्शन नहीं किया, वहाँ वे अपने कार्यकाल के आख़िरी दौर में होने के साथ काफ़ी अलोकप्रिय भी थीं और उनके समर्थन आधार में विपक्षी दलों में अच्छी-ख़ासी सेंध लगा दी थी। इसके अलावा, 1998 और 1999 में क्रमश: संयुक्त मोर्चा की सरकार के पतन और एक वोट से राजग सरकार के पतन के कारण कुछ ही समय के अंतराल पर चुनाव हुए। इसके कारण कई अन्य कारणों ने बहुत से महत्त्वपूर्ण कारणों ने कई राज्यों के फ़ैसलों को प्रभावित किया (1998 : मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र; 1999 : मध्य प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश)। 2004 और 2009 में उभरने वाली प्रवृत्तियाँ स्पष्ट दिखाती हैं कि एक अच्छा प्रदर्शन करने वाली सरकार लोकसभा में अपने दल के लिए समर्थन जुटा सकती है।

इस विश्लेषण से ज़ाहिर है कि भारत में पिछले पच्चीस वर्षों में राजनीतिक प्रतियोगिता राज्यों में ही केंद्रित होती चली गयी है और उसका सीधा प्रभाव राष्ट्रीय राजनीति पर पड़ा है।

उभरती हुई प्रवृत्तियाँ

सवाल यह है कि ऊपर वर्णित प्रवृत्तियों का 2014 के लोकसभा चुनावों के लिए क्या महत्त्व है? हम देख सकते हैं कि भारत के 28 राज्यों[18] में सत्ता की भागीदारी विभिन्न दलों के बीच हो रही है। 14 राज्यों में संप्रग के घटक दल सत्ता में हैं। इनमें से 10 राज्यों में अकेले कांग्रेस की सरकार है। चार राज्यों में संप्रग की गठबंधन सरकार है (इनमें से दो सरकारों का नेतृत्व कांग्रेस के सहयोगी दल कर रहे हैं)। अन्य सात राज्यों में राजग के घटक दल सत्ता में हैं। इनमें से पाँच राज्यों में भाजपा (राजग

---

[18] भारत के उनतीसवें राज्य तेलंगाना को इस गणना में शामिल नहीं किया गया है.

08_sandeep_Layout 1 5/1/2014 3:37 PM Page 102

का नेतृत्व करने वाले दल) की सरकार है और बाक़ी दो में गठबंधन सरकारें हैं। इनमें से एक भाजपा छोटा सहयोगी दल है और दूसरे में यह सत्ता में हिस्सेदार है। इस तरह, दो प्रमुख राष्ट्रीय गठबंधन 28 में से 21 राज्यों में सत्ता में है। एक राज्य में माकपा की सरकार है और बाक़ी राज्यों में अन्य राजनीतिक दलों की सरकारें हैं।[19] यह इस बात की ओर संकेत करता है कि राज्य स्तर पर चुनावी प्रतियोगिता की गत्यात्मकता 2014 के चुनावों में चुनावी नतीजों की प्रकृति को प्रभावित करेगी। हर राज्य की विशिष्टताओं के आधार पर दो पड़ोसी राज्यों में आने वाले चुनावी नतीजों के अलग-अलग रहने की सम्भावना है। लोकनीति-सी.एस.डी.एस. द्वारा किये गये ट्रैकर पोल से सामने आने वाली कुछ प्रवृत्तियों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इस ट्रैकर पोल से यह बात सामने आती है कि जिन राज्यों में सरकार अच्छा प्रदर्शन कर रही है, वहाँ लोकसभा चुनावों में सत्तारूढ़ दल को फ़ायदा होने की सम्भावना है।[20] बहुत से राज्यों में मतदाताओं की राज्य सरकार ने नाखुशी राष्ट्रीय चुनावों में सत्तारूढ़ दल के ख़िलाफ़ मतदान के रूप में व्यक्त हो सकती है।[21]

इसके अलावा अगर संप्रग से जुड़ी राज्य सरकारों के ख़िलाफ़ असंतोष को केंद्र की संप्रग सरकार के विरुद्ध मौजूद मजबूत नकारात्मक भावना से जोड़ दिया जाए, तो ऐसी राज्य सरकारों को एक तरह से 'दोहरी मार' झेलनी पड़ेगी।[22] अंत में, यदि राज्य सरकार से काफ़ी हद तक संतुष्ट होने के बावजूद मतदाता यह मानते हैं कि राज्य में सत्तारूढ़ पार्टी की राष्ट्रीय स्तर पर कोई ख़ास भूमिका नहीं होगी, तो लोकसभा चुनावों में उनकी प्राथमिकता बदल सकती है।[23] आम आदमी पार्टी (आप) जैसे चुनावी राजनीति के नये खिलाड़ियों का लक्ष्य यह है कि वे मुख्यधारा के राजनीतिक दलों के प्रति असंतोष और मोहभंग से पैदा हुए स्थान पर क़ब्ज़ा करें। 2014 के चुनावों में इस बात का परीक्षण होगा कि क्या यह मुख्यधारा की राजनीति का एक विकल्प या एक वैकल्पिक दृष्टिकोण उपलब्ध करा सकता है।

2014 के लोकसभा चुनावों के पहले दो स्पष्ट प्रवृत्तियाँ सामने आ रही हैं। पहली बार, एक प्रमुख राष्ट्रीय पार्टी भाजपा ने एक मौजूदा मुख्यमंत्री को प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया है। अतीत में भी इस देश में ऐसे प्रधानमंत्री हुए हैं जो राज्यों के मुख्यमंत्री रहे हैं। लेकिन यह पहला मौक़ा है जब एक राष्ट्रीय दल ने मौजूदा मुख्यमंत्री को प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया है।[24] यह राजनीति के आधार में बदलाव का स्पष्ट संकेत है।

दूसरा, लोकसभा चुनावों में जीत और हार काफ़ी हद तक विभिन्न दलों के राज्य स्तरीय नेताओं की छवि और प्रदर्शन पर निर्भर करेगा। विभिन्न राज्यों के नतीजे महत्त्वपूर्ण राज्य स्तरीय मुद्दों से तय होंगे। इसमें राज्य स्तरीय नेताओं के बारे में आम राय की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी।

दरअसल, चुनावी राजनीति की इन उभरती प्रवृत्तियों से यह बात भी स्पष्ट होती है कि संघीय राजनीति में राज्य ज़्यादा प्रभावशाली भूमिका निभाने लगे हैं। राज्यों की ओर सत्ता के केंद्र में बदलाव से भारतीय लोकतंत्र का बहुआयामीय स्वरूप स्पष्ट रूप से सामने आता है। 2014 के चुनावों में इस प्रवृत्ति को मजबूती मिल सकती है।

---

[19] विभिन्न दलों की सरकारों के संबंधित यह विवरण 28 फ़रवरी, 2014 तक का है.

[20] कर्नाटक, असम, गुजरात, मध्य प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, पंजाब, गोवा, ओडीशा, पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु को ऐसे राज्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है.

[21] झारखण्ड और उत्तर प्रदेश को इसका उदाहरण माना जा सकता है.

[22] आंध्र प्रदेश, हरियाणा और उत्तराखण्ड को इसका उदाहरण माना जा सकता है.

[23] बिहार इस प्रवृत्ति को सबसे अच्छा उदाहरण है.

[24] एच.डी. देवेगौड़ा, 1996 में जब कर्नाटक के मुख्यमंत्री थे, उस समय उन्हें प्रधानमंत्री बनाया गया था. ऐसे बहुत से उदाहरण है जब राज्यों के मुख्यमंत्री आगे चलकर प्रधानमंत्री बने. इस तरह के नामों में मोरारजी देसाई, चरण सिंह, वी.पी. सिंह और पी.वी. नरसिंह राव का नाम उल्लेखनीय है.

संदर्भ

अजय मेहरा और गर्ट डब्ल्यू. क्वेक (2003) (सम्पा), *पॉलिटिकल पार्टीज़ ऐंड पार्टी सिस्टम इन इण्डिया,* सेज, नयी दिल्ली; सुहास पलशीकर और योगेंद्र यादव (2009), 'बिटविन फ़ार्चून ऐंड वर्च्यू : एक्सप्लेनिंग द कांग्रेसे'ज़ एम्बिगुअस विक्टरी इन 2009', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 39, अंक 64.

एसडीएसए (2008), *स्टेट ऑफ़ डेमॉक्रैसी इन साउथ एशिया रिपोर्ट,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

योगेंद्र यादव और सुहास पलशीकर (2009), 'टेन थीसिस ऑन स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया', संदीप शास्त्री, के.सी. सूरी और योगेंद्र यादव (सम्पा.), *इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन इण्डियन स्टेट्स,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

संदीप शास्त्री (2001), *चेंजिंग कोंटूर्स ऑफ़ कॉम्परेटिव फ़ेडरलिज़म : अंडरस्टैंडिंग द इण्डियन एक्सपीरिएंस,* जॉन आर्चर्स, इबादान.

–(2007), 'पार्लियोमेंटरी गवर्नमेंट ऐंड कोयलिशन गवर्नमेंट : निगोशिएटिंग स्पेसेज़', गोपा कुमार (सम्पा.), *फ़्यूचर ऑफ़ पार्लियामेंटरी डेमॉक्रैसी इन इण्डिया,* कांसेप्ट, नयी दिल्ली.

–(2013), 'पार्टी सिस्टम ऐंड डेमॉक्रैसी इन इण्डिया : डिस्टिंक्टिव फ़ीचर्स ऐट द नैशनल, स्टेट ऐंड लोकल लेवल', अजय मेहरा (सम्पा.), *पार्टी सिस्टम इन इण्डिया : इमर्जिंग ट्रैजेक्टरीज़,* लैंसर, नयी दिल्ली.

–(2014) (सद्य:प्रकाशित), 'द इमर्जेंस ऑफ़ ऐन ऑथेंटिक कॉम्पिटीटिव पार्टी सिस्टम ऐंड सिविल सोसायटी स्पेस इन इण्डिया', जो किनसैड, वोल्फ़ैंग रेनजेक, क्लॉस डेटरबेक (सम्पा.), *पॉलिटिकल पार्टीज़ ऐंड सिविल सोसायटी इन फ़ेडरल कंट्रीज़,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन.

–(2009), 'लीडरशिप ऐट द स्टेट लेवल मैटर्ड', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 39, अंक 64.

संदीप शास्त्री, के.सी. सूरी और योगेंद्र यादव (2009) (सम्पा.), *इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन इण्डियन स्टेट्स,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

08_sandeep_Layout 1 5/1/2014 3:37 PM Page 104